International Journal of Advanced Academic Studies 2020; 2(1): 309-311

E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
Impact Factor: RJIF 5.12
IJAAS 2020; 2(1): 309-311
Received: 25-11-2019
Accepted: 27-12-2019

किरण कुमारी
+2 संगीत शिक्षिका, +2 उच्च विद्यालय, कल्याणपुर, समस्तीपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
किरण कुमारी
+2 संगीत शिक्षिका, +2 उच्च विद्यालय, कल्याणपुर, समस्तीपुर, बिहार, भारत

शास्त्रीय शिक्षा पद्धति का स्वरूप

किरण कुमारी

सारांश
भारतीय संगीत के दो प्रकार है– शास्त्रीय संगीत और भाव संगीत। शास्त्रीय संगीत उसके कहते हैं जिसका एक नियमित शास्त्र होता है, जिसमें कुछ विशेष नियमों का पालन करना अनिवार्य है जैसे गायन में राग के अनुकूल स्वरों को लगाना, अलाप तान, बोलतान, सरगम इत्यादि को सफाई और तैयारी के साथ सुन्दर ढ़ंग से पेश करना, गाने–बजाने का निश्चित क्रम होना, स्वरलय , तालबद्ध होना, उच्चारण सही होना इत्यादि–इत्यादि। इन्हें आत्मसात करते हुए ''आनंद की सृष्टि'' करना ही हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का मूल स्वरूप और उद्देश्य है।
भाव संगीत में शास्त्रीय संगीत के समान न कोई नियमों का बंधन होता हे न कोई शास्त्र। इसका एकमात्र उद्देश्य है कानों को अच्छा लगना। भाव संगीत अधिकतर दादरा और कहरवा जैसे छोटे तालों में निबद्ध होते हैं। इसकी रचना भावानुकूल और आकर्षक होती है। विभिन्न वाद्यों का प्रयोग श्रृंगार रस के हृदय–स्पर्शी शब्द और सुरीले कंठ साधारण जनता को स्वतः ही आकर्षित कर लेते हैं और उन्हें झूमने पर मजबूर कर देते हैं।
हम शास्त्रीय गायन की चर्चा करें तो अधिकांश संगीत छात्रों के साथ होता यह है कि शास्त्रीय संगीत के नियमों को सीखते–सीखते वे उसके मूल उद्देश्य से भटक जाते हैं। वे शास्त्रीय संगीत के शास्त्र यानि व्याकरण के चक्कर में इतना फँस जाते हैं कि संगीत की रंजकता को ही भूल जाते हैं और वास्तविक उद्देश्य के बदले वही उनका मूल उद्देश्य बन जाता है। उनमें केवल रसहीन गलाबाजी दिखाई पड़ने लगती है और आमश्रोता उनसे और शास्त्रीय संगीत से दूर होते चले जाते हैं। आवश्यकता है जनसामान्य में शास्त्रीय संगीत के प्रति अभिरूचि पैदा करने की। आम श्रोता शास्त्रीय संगीत से जुड़ सके, उसे समझ सकें और उसका आनंद उठा सकें ऐसे प्रयासों की।

प्रस्तावना
शास्त्रीय संगीत शिक्षा पद्धति का स्वरूप यह होना चाहिए कि शास्त्रीय नियमों के साथ इसकी सुन्दरता और रंजकता कम न हो बल्कि और निखर कर सामने आये। शास्त्रीय संगीत भले ही नियमबद्ध है पर इन नियमों के अंदर ही इतना वृहद संसार है कि उसका पार पाना कठिन हैं। इन नियमों के दायरे में भी हम जितना भी काम कर लें वह समुद्र से पानी निकलने जैसा ही होगा। बस हम जो भी काम करें संगीत के भावात्मक और मनोरंजक पक्ष को कायम रखते हुए करें। शास्त्रीय संगीत स्वर प्रधान होता है। गायक अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर लय–ताल की सीमा में रहते हुए नए–नए समूहों की रचना करते हैं और उसे प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुति सुन्दर और मनोरंजक होगी तो वह किसी को भी आकर्षित कर सकती है, चाहे वह संगीत का ज्ञाता हो या नहीं। गायकी का अर्थ ही है सौंदर्य भरना। शास्त्रीय नियमों द्वारा प्रदत्त स्वर, वादी–संवादी, न्यास–विन्यास द्वारा किसी राग को सुन्दरता से सजाना यही गायकी है। गायकी से ही घरानों का निर्माण हुआ। एक गायक ने कुछ शिष्य तैयार किये। उनके शिष्यों ने फिर कुछ शिष्य तैयार किये। इस तरह शिष्यों की पीढ़ी आगे बढ़ती गयी जिसे घराना कहा गया। कह सकते हैं की गुरू–शिष्य परम्परा से घरानों का निर्माण हुआ। इसकी शुरूआत तानसेन के समय से उनके वंशजों द्वारा हुई। ऐसा माना जाता है। तानसेन के पुत्र के वंशज सैनिये कहलाये और पुत्री के वंशज बानिये। मध्यकाल में देशी रियासतों में नए–नए घरानों का जन्म और विकास हुआ। प्रत्येक रियासत में कुछ गायक–वादक होते थे जिन्हें अपने गायन–वादन से राजा को खुश करना पड़ता था। उन्हें राजा का पूर्ण आश्रय प्राप्त थां उनके पास राज्य की सारी सुख–सुविधाएं थी और वे बड़े आराम से जिन्दगी गुजारते थें। भरण–पोषण की चिंता से मुक्त रहने के कारण वे बाहरी शिष्यों को संगीत शिक्षा देने से कतराते थे पर अपने पुत्रों को सिखानें में कोई कसर न छोड़ते थे, जी जान से सिखाते थे।
उस वक्त संगीत शिक्षा पद्धती का ये हाल था कि संगीत में रूचि रखनेवाले बाहरी व्यक्तियों के लिए वह बड़ा दूर की चीज थीं अगर कोई गुरू या उस्ताद से सीखना भी चाहता तो उसे कड़ी मशक्कत करनी पड़ती थी। दिन–रात गुरू की सेवा में लगे रहकर थोड़ा–बहुत सीख पाते थे।

शिष्य पर उस्ताद की कड़ी निगरानी रहती थी। न तो उसे किसी अन्य गायक को सुनने की आज्ञा रहती न उस्ताद की आज्ञा के बिना वह कहीं गा सकता था। इस नियंत्रण का प्रभाव अच्छा भी था और बुरा भी। अच्छा यह कि शिष्य पर बाह्‌य प्रभाव नहीं पड़ने उसके भटकने की गुंजाइश नहीं थी। बुरा यह कि कभी–कभी अयोग्य गुरू के चक्कर में पड़कर शिष्य का पूरा जीवन ही बर्बाद हो जाता था। कह सकते हें कि घरानों का निर्माण गायक की संकुचित दृष्टि का परिणाम हे। घरानों को संगीत का पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाने का श्रेय तो जरूर जाता है पर सिर्फ उनके वंशजों के माध्यम से संगीत को सर्व सुलभ करने और आधुनिक शास्त्रीय संगीत शिक्षा का स्वरूप तैयार करने का पूरा श्रेय जाता है इन दो महान विभूतियों को–स्व. पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और स्व. श्री विष्णु नारायण भातखंडे जी को। आज का संगीत जगत इन्हें शत् शत् नमन करता है। इन्होंने अनेक कठिनाईयों को सहते हुए अपना पूरा जीवन संगीत साधना और सर्व साधारण के लिए संगीत को अधिक सुलभ कराने में लगा दिया।

ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध संगीतज्ञ स्व. पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का जन्म 18 अगस्त, 1872 को श्रावण पूर्णिमा के दिन कुरून्दवाड़ रियासत के बेलगांव नामक स्थान में हुआ था। बचपन में दीपावली के दिन आतिशबाजी में आँखें गवां चुके पलुस्कर जी ने संगीत की शिक्षा मिरज के पंडित बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर जी से ली। वहीं मिरज रियासत के तत्कालीन महराज ने उन्हें राजाश्रय दिया और उनकी सुख–सुविधा का सारा प्रबंध करा दिया। सन् 1896 में वे सभी सुखों को छोड़कर देशाटन के लिए निकल पड़े। वे जहाँ भी गए वहीं उनका भव्य स्वागत हुआ। उन्होंने भारत के अनेक स्थानों का भ्रमण किया जिनमें प्रमुख हैं–सतारा, बड़ौदा, ग्वालियर, दिल्ली, लाहौर, श्रीनगर, इलाहाबाद, भरतपुर इत्यादि। उन्होंनें हर जगह संगीत श्रोताओं को मुग्ध किया और संगीत की प्रतिष्ठा बढ़ाई।

संगीत का प्रचार–प्रसार करने व बालक–बालिकाओं के संगीत शिक्षा के लिए उन्होंने 5 मई, 1901 को लाहौर में प्रथम संगीत विद्यालय–गान्धर्व महाविद्यालय की स्थापना की। उनके अधिकांश शिष्य उनके साथ रहते थे जिनके खाने–पीने, रहने तथा शिक्षा की व्यवस्था वे निःशुल्क करते थे। उनके शिष्यों में स्व. बी.ए. कशालकर, स्व. पंडित ओंकार नाथ ठाकुर, बी.आर. देवधर, स्व. बी.एन. पटवर्धन आदि नाम विशेष उल्लेखनीय है। उस समय तक गीत को लिखने के लिए कोई स्वर–लिपि पद्धति नहीं थी। इसलिए उन्होंने एक स्वरलिपि पद्धति की रचना की जिसे विष्णु दिगम्बर स्वलिपि पद्धति कहते हैं। उन्होंने कुल मिलाकर पचास पुस्तकें लिखी, जिसमें संगीत बाल प्रकाश, बीस भागों में राग प्रवेश, संगीत शिक्षा, महिला संगीत आदि प्रमुख हैं। जनता में संगीत के प्रचार–प्रसार के लिए वे कुछ समय तक ‘संगीतामृत प्रवाह’ नामक मासिक पत्रिका भी निकालते रहे। सन् 1930 में वे लकवाग्रस्त हो गए और 1931 में उनका देहांत हो गया।

श्री विष्णु नारायण भातखंडे जी का जन्म 10 अगस्त, 1860 को मुंबई के बालकेश्वर नामक स्थान में कृष्णाष्टमी के दिन हुआ था। स्कूली शिक्षा के साथ–साथ वे संगीत शिक्षा भी प्राप्त करते रहे। उन्होंने सितार, गायन और बांसुरी की शिक्षा प्राप्त की थी और इनका अच्छा अभ्यास किया था। उन्होंने सेठ बल्लभदास जी से सितार और गुरू राव बुआ बेलवाथकर, जयपुर के मुहम्मद अली खां, ग्वालियर के पं. एकनाथ, रामपुर से कल्बेअली खां आदि व्यक्तियों से गायन शिक्षा ली। उन्होंने बी.ए. और एल.एल.बी. की परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण की। कुछ दिन वकालत की पर उनका मन वकालत में नहीं लगा और वे वकालती छोड़ संगीत सेवा में लग गए। संगीत के शास्त्रीय पक्ष की ओर संगीतज्ञों का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। उनके समय में संगीतज्ञ संगीत शास्त्र पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते थे जिसके कारण उनके गायन–वादन में बड़ी विषमताएँ आ गयी थी। अतः उन्होंने देश के विभिन्न भागों का भ्रमण किया और संगीत के प्राचीन ग्रंथों की खोज की। यात्रा में जहाँ भी उन्हें संगीत का विद्वान मिला उससे सहर्ष मिलते गए। उनसे भावों का विनिमय किया और जो कुछ भी ज्ञान धन देकर, सेवा कर अथवा शिष्य बनकर भी जो कुछ भी प्राप्त हुआ उसे निःसंकोच प्राप्त किया। विभिन्न रागों के बहुत से गीत एकत्रित किये और उनकी स्वरलिपि ‘भातखंडे क्रमिक पुस्तक छः भागों में संग्रहित कर संगीत प्रेमियों के लिए अथाह भण्डार का द्वार खोल दिया। इन क्रमिक पुस्तकों से संगीत के छात्रों को बहुत लाभ हुआ।

क्रियात्मक संगीत को लिपिबद्ध करने के लिए भातखंडे जी ने एक बेहद सरल और नवीन स्वर लिपि पद्धति की रचना की जो भातखंडे स्वरलिपि पद्धति कहलाती है। आज के हिन्दुस्तानी संगीत में यही स्वरलिपि पद्धति प्रचलित है।

नवीन थाट–राग वर्गीकरण भी श्री भातखंडे जी की ही देन है। उस वक्त रेडियो, टेलिविजन का दौर नहीं था तो संगीत के प्रचार–प्रसार के लिए उन्होंने संगीत सम्मेलन की कल्पना की और 1916 में बड़ौदा नरेश के सहयोग से प्रथम संगीत–सम्मेलन का सफलतापूर्वक आयोजन किया। 1925 तक उन्होंने पाँच वृहद् संगीत–सम्मेलन आयोजित किये। उनके प्रयत्नों से कई संगीत महाविद्यालयों की स्थापना हुई जिसमें ‘मैरिस म्यूजिक कॉलेज, लखनऊ’, माधव संगीत विद्यालय, ग्वालियर’ तथा ‘म्यूजिक कॉलेज, बड़ौदा आदि उल्लेखनीय है। उन्होंने संगीत पर कई पुस्तकें लिखी जो इस प्रकार है–हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति (क्रमिक पुस्तक मालिका–छः भागों में), भातखंडे संगीत शास्त्र–चार भागों में, अभिनय राग मंजरी, लक्ष्य संगीत, स्वर मालिका आदि।

जीवन भर संगीत की सेवा करते हुए इस महान संगीतज्ञ का 16 सितम्बर 1936 को देहावसान हो गया।

वास्तव में पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्क और पं. विष्णु नारायण भातखंडे एक दुसरे के पूरक थे। एक ने जनता के समक्ष संगीत का भव्य रूप रखा तो दुसरे ने उन्हें देखने के लिए ज्ञान–चक्षु प्रदान किये। आज संगीत जगत इन दो महान विभूतियों का ऋणी है जिन्होंने संगीत को सर्वसाधारण के लिए पुरी तरह से सुलभ कराया। वर्त्तमान शास्त्रीय संगीत शिक्षा का स्वरूप इन्हीं दो महान विभूतियों द्वारा तैयार ढ़ाँचे पर खड़ा है।

आज का समय पुरी तरह बदल चुका है। संगीत–सम्मेलन, रेडियो, टेलिविजन, कम्प्यूटर पर नेट–यूट्यूब जैसे कई आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक साधन हो गये हैं जिन्होंने संगीत को सबके लिये अति सुलभ कर दिया है। प्रश्न है कि नेट पर भी कितने लोग शास्त्रीय संगीत को सर्च करते हैं। रिमोट से चैनल बदलने वाले आधुनिक युग में दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले शास्त्रीय कार्यक्रम के कितने दर्शक और श्रोता हैं?

यह खुशी की बात है कि संगीत शिक्षा को उच्च विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयीय शिक्षा से जोड़ा गया है जिससे संगीत में रूचि रखने वाले छात्रों को आसानी हो गयी है। उन्हें इसके लिए भटकना नहीं पड़ता। एक तरह से उनकी मुंह मांगी मुराद पुरी हुई है। इसके अलावा कई संगीत संस्था भी हैं जो शास्त्रीय संगीत की शिक्षा देते हैं। विद्यालीय शिक्षा से जुड़ने से रोजगार के अवसर भी बढ़े हैं। विभिन्न चैनलों ने चमक–दमक भरी संगीत प्रतियोगता का आयोजन कर संगीत की तरफ लोगों का रुझान बढ़ाया है, संगीत सिखने की ललक बढ़ाई है। पर यहाँ भी शास्त्रीय संगीत को पर्याप्त जगह नहीं मिली है। शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने के लिए यह जरूरी है कि हम उसके मूल उद्देश्य ‘‘आनंद की सृष्टि’’ को ध्यान में रखते हुए नियमों के अंदर स्वर का काम करें। उदाहरणार्थ किसी राग की विलंबित बंदिश गाते हुए इतना विलम्ब न कर दें कि आम श्रोता ऊबने लगे। स्वतंत्र अलाप लम्बा और ऊबाउ न हो। बंदिश को उस राग के अनुकूल स्वरों के साथ इस तरह भरना चाहिए कि रोचकता बनी रहे और उसका भाव पक्ष कमजोर न हो। तभी आम दर्शक और श्रोता इससे जुड़ पायेंगें और इसका आनंद उठा पायेंगें।

निष्कर्ष

शास्त्रीय संगीत को समझने और उसकी सही प्रशंसा करने के लिए संगीत का थोड़ा बहुत ज्ञान सबको होना जरूरी है। संगीत की बारीकियाँ सभी को भले समझ न आये, कम से कम इतना तो समझ सकें कि आलाप, तान क्या है, सरगम क्या चीज है? इसके लिए हमें जनता को थोड़ा बहुत संगीत से शिक्षित करना होगा। यह तब संभव होगा जब संगीत शिक्षा को प्राइमरी शिक्षा से जोड़ा जायेगा। हम प्राथमिक कक्षा से ही राष्ट्रभाषा हिंदी के अलावा विदेशी भाषा अंग्रेजी को जगह दे सकते हैं तो संगीत की भाषा को क्यों नहीं? जबकि भारतीय जीवन के पग–पग में संगीत है। जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न संस्कारों में संगीत अभिन्न रूप से है। तब संगीत की शिक्षा, शिक्षा के शुरूआती दौड़ से ही क्यूँ न शुरू हो? हम नहीं कहते कि इससे शास्त्रीय संगीत कलाकारों की बड़ी खेप तैयार हो जाएगी या तानसेनों की फौज खड़ी हो जाएगी पर अच्छे तानसेन जरूर तैयार हो जायेंगें और यही शास्त्रीय संगीत शिक्षा पद्धति का सही स्वरूप होगा।

संदर्भ

1. राग परिचय भाग–1
   'जीवन और संगीत' पृष्ठ संख्या–171
   लेखक– पं. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव
   प्रकाशक– संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद
   संस्करण वर्ष–2001
2. राग परिचय भाग–1
   'शास्त्रीय संगीत और चित्रपट संगीत' पृष्ठ संख्या–166
   लेखक– पं. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव
   प्रकाशक– संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद
   संस्करण वर्ष–2001
3. राग परिचय भाग–1
   'पंचम अध्याय' पृष्ठ संख्या–107
   लेखक– पं. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव
   प्रकाशक– संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद
   संस्करण वर्ष–2001
4. राग परिचय भाग–2
   'विष्णु दिगम्बर पलुष्कर की जीवनी और योगदान' पृष्ठ संख्या–218
   लेखक– पं. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव
   प्रकाशक– संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद
   संस्करण वर्ष–2003
5. राग परिचय भाग–2
   'विष्णु नारायण भातखण्डे की जीवनी और योगदान' पृष्ठ संख्या–221
   लेखक– पं. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव
   प्रकाशक– संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद
   संस्करण वर्ष–2003